

* ओ३म् *

स्तुति-चन्द्रिका

भाषाटीकासहित

ब्रह्मचारी लक्ष्मण जी
ईश्वर आश्रम,
ईश्वर-पर्वत, गुप्तगंगा, श्रीनगर ।

सर्वाधिकार सुरक्षित है ।

श्रीनगर, कश्मीर, संवत् २००६

प्रथम संस्करण]

[मूल्य द आने



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

[creator of
hinduism
server]



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

[creator of
hinduism
server]

* ओ३म् *

स्तुति-चन्द्रिका

भाषाटीकासहित

ब्रह्मचारी लक्ष्मण जी
ईश्वर आश्रम,
ईश्वर-पर्वत, गुप्तगंगा, श्रीनगर ।

सर्वाधिकार सुरचित है ।

श्रीनगर, कश्मीर, संवत् २००६

प्रथम संस्करण]

[मूल्य द आने

सूचना

पहले 'स्तुति-चन्द्रिका' के साथ श्रीब्रह्मविद्या को छपाने का कोई विचार नहीं था। 'स्तुति-चन्द्रिका' का प्रूफ-संशोधन करते समय, कई सज्जनों की प्रार्थना पर, ऐसा उचित समझा गया। फलतः श्रीब्रह्मविद्या को 'स्तुति-चन्द्रिका' के साथ ही प्रकाशित किया जाता है। यही कारण है कि प्राक्कथन में इस का उल्लेख नहीं हुआ है।

FOREWORD

1. My heart overflows with immeasurable joy and infinite love and my head bows down in profound reverence to that Parama Siva in whose glory our learned Swami Ji is presenting this sweet collection of some of the excellent outpourings of the Shaiva-Advaita-Vadins of yore, whose rich contributions form the bulk of Kashmir Shaivism.

2. The author, Shri Swami Ishwar Swaroop Ji, as most of his disciples like to call him, hardly needs any introduction to Sanskrit lovers. It was as early as in the year 1933 that he brought out, for the first time, a magnificent edition of Shrimad Bhagwat Gita with a commentary by Shri Abhinava Gupta Acharya. That unique book had such an overwhelming response from high ranking Sanskrit scholars and the general public that later in the year 1943, on constant persuasion of his devotees, Shri Swami Ji had to bring out the first edition of 'Samb-Panchashika' with the text and translation in Hindi. It is here that we find convincing proof of the intellectual and spiritual attainments of Shri Swami Ji.

3. I feel, however, incompetent to estimate the greatness of this highly dynamic Yogi and a powerful thinker, residing in a silent solitary Ashram on the mountain top of Ishabar, seven miles away from the capital of Kashmir. I have, like so many others, found in him some indefinable and conspicuous power

which invariably consecrates anyone who comes in the vicinity of this great and magnetic personality. With all this as the background, I feel convinced that the reader stands to benefit immensely from the publication of Stuti-Chandrika, in its present form.

4. In this Stuti-Chandrika Swami Ji has very successfully achieved a variety of objects. In the first place he endeavours, through a masterly exposition of the thought-elevating meanings of these verses, to implant the seed of aspiration (शुभ इच्छा), to augment the Godward push and finally to bring the psychic being of an individual aspirant in closer touch with the Divine Truth, which is generally hidden in man by his mind, the vital being and physical nature. Prayer has undoubtedly that efficacy. Secondly, in the frequent footnotes, we get revealing glimpses of the fundamentals and the history of Shaivism. Thirdly, the mere recitation of these sacred mantras leads one to the higher regions of thought. Any attempt at concentration on their embodied meanings is bound to have the miraculous effect of focusing one's scattered consciousness and arousing in him greater interest in other thought-provoking aspects of the underlying principles of this type of ancient Monism.

NEW DELHI.

Dated the 31st May, 1952.

S. P. Dhar

प्राक्कथन

भगवान् शङ्कर के अनन्य भक्तों की इस पुस्तिका के रूप में सेवा करने का सौभाग्य मुझे आज प्राप्त हुआ है। उन भक्तों के रससिक्त कान्यामृत को पान करने का सुअवसर ईश्वर के शक्तिपात के द्वारा ही यदा-कदा प्राप्त होता है। स्वनामधन्य उन शैवी आचार्यों के इनें-गिने श्लोकों का भाषानुवाद करने से न केवल मेरी आत्मा ही हर्षित होगी, अपितु इन श्लोकों का प्रतिदिन पाठ करने से जनता का अन्तःकरणवर्ग भी शनैः शनैः निर्मल बनने का प्रयास करेगा।

यद्यपि भगवान् शङ्कर का गुणानुवाद स्वयं शारदा देवी तथा सहस्र मुख वाले शेषनाग जी भी करने में असमर्थ हैं, तथापि अपनी-अपनी प्रतिभा एवं भक्ति के अनुसार कई आचार्यों ने अनेकानेक स्तुतियों के द्वारा भगवान् शिव को प्रसन्न बनाने का प्रयास किया है, तथा इसी व्याज से अपना और मनुष्यमात्र का उपकार भी किया है।

यह तो मानी हुई बात है कि काश्मीर-मण्डल में अनादि-काल से भगवान् शङ्कर के उपासकों की गणता प्रचुर मात्रा में रही है। इसी भू-स्वर्ग में उन आचार्यों ने अनेक सद्ग्रन्थों की रचना की है—जो “शैव-साहित्य” के नाम से प्रसिद्ध बने हैं। इन ग्रन्थों का अवलोकन करने पर भारत क्या, सभी पाश्चात्यदेशवासी भी मन्त्रमुग्ध तथा आश्र्यान्वित बन कर उन आचार्यों के मस्तिष्क एवं ज्ञान की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं।

किन्तु, शोक से कहना पड़ता है कि इन रहस्यमय शैवी ग्रन्थों का अवलोकन पाश्चात्यदेशवासी जिस उत्साह और परिश्रम से करने का प्रयत्न करने लगे हैं, उस उद्योग से अभी भारत-जनता पूर्णतया अनभिज्ञ है। वास्तव में, इन ग्रन्थों का प्रचार भारत में अति अल्प

मात्रा में हो पाया है। संभवतः इसके मुख्य चुने हुए कारण यही हो सकते हैं कि भारत की मूर्धा बनी हुई काश्मीर नगरी, पर्वतावलियों से चारों ओर घिरी रहने के कारण, अन्यान्य देशों से दूर तथा विलग रह कर अपनी संस्कृति और साहित्य को अपने तक ही सीमित रख सकी है। दूसरा हेतु यह कि यहाँ के विद्वज्जनों की भाषा या तो संस्कृत रही है अथवा काश्मीरी; इन दोनों भाषाओं के अतिरिक्त वे अन्य भाषाओं को न तो जानते ही थे और न जानने के इच्छुक ही थे। अपने शिष्यों को पढ़ाने के समय वे अपनी देशभाषा काश्मीरी को ही माध्यम बनाते थे, तथा अपनी पुस्तकों को वे “शारदा लिपि” में लिखा करते थे। ऐसी अवस्था में भिन्न-भिन्न भाषाओं में इन ग्रन्थों का अनुवाद होना नितांत असंभव था। इसके अतिरिक्त प्रायः यहाँ के सभी विद्वान् वहिर्मुख-वृत्ति को ‘फोक’ की भाँति त्याग कर अन्तमुख अवस्था को प्राप्त करना ही परम लक्ष्य मानते थे। इन्हीं कारणों के फलस्वरूप यहाँ का साहित्य यहाँ के निवासियों की ही ‘निधि’ बन कर रहा है।

अस्तु, शैव सिद्धान्त के संस्थापक पूर्व आचार्यों के ग्रन्थों में से कठिपय भक्तिरसपूर्ण श्लोकों को एकत्रित करके इस ‘स्तुति-चन्द्रिका’ नामक पुस्तिका की रचना की गई है। जनता के हाथों में इस प्रस्तुत पुस्तिका को पहुँचाने का सौभाग्य मेरे कई ब्रेमी जनों पर ही निर्भर है; उनकी सत्-प्रेरणा से विवश बन कर मुझे उनके हितार्थ यह सुप्रयास करना पड़ा। ‘स्तुति-चन्द्रिका’ को प्रकाशित करने का बीड़ा भी इन महानुभावों ने अपने कंधों पर लिया है, अतः इस शुभ-कार्य के उपलक्ष्म में मैं उन्हें हार्दिक आशीर्वाद देता हूँ।

इसके साथ ही इस पुस्तिका को बनाने में मेरी दो शिष्याओं ने अपनी सरल बुद्धि के अनुसार किसी-किसी स्थान पर अपना सुपरामर्श देकर मुझे प्रसन्न किया है, अतः उन्हें भी मैं हृदय से आशिष देता हूँ।

पाठकों की सुविधा के लिये, जहाँ तक हो सका है, इन स्तुत्यात्मक

श्लोकों का सरल हिन्दी में अर्थ अन्वय सहित करने का प्रयत्न किया गया है। अन्वय समझाने के लिये कुछ ऐसे शब्दों का कहीं-कहीं समावेश किया गया है जो मूल श्लोक में नहीं हैं। ऐसे शब्दों को कोष्ठकों के बीच में रखा गया है। संस्कृत के विद्यार्थियों को सबसे बड़ी कठिनाई अन्वय समझने में होती है, अतः सामान्य योग्यता के पाठकों को इससे बड़ी सुगमता होगी। इसके अतिरिक्त किसी-किसी आवश्यक स्थान पर श्लोकों का भाव विस्तृत रूप से समझाने के लिये नीचे पाद-टिप्पणियाँ दी गई हैं। इन पदों के आगे भिन्न-भिन्न प्रकार के चिह्न भी चिह्नित कर दिये गये हैं।

अन्त में मैं यही कहूँगा कि यदि पाठक-महोदय इस स्तोत्र के पढ़ने से अपनी मानसिक शांति किसी भी अंश में प्राप्त करेंगे तो मैं अपने आपको सफलमनोरथ तथा कृतार्थ समझूँगा।

द्वैश्वर-आश्रम,
द्वैश्वर-पर्वत,
गुजरातगांगा, श्रीनगर। | {
१५ मई १९५२

शिवभक्तानुचर
लक्ष्मण

卷之三

नमः परमेश्वराय

अग्राधसंशयाम्भोधिसमुत्तरणतारिणीम् ।
वन्दे विचित्रार्थपदां चित्रां तां गुरुभारतीम्* ॥१॥

(अहं)	= मैं	अर्थ-	= अर्थों और
तां	= उस	पदाम्	= पदों वाली
अग्राध-	= गहरे	चित्राम्	= अनूठी
संशय-	= सन्देहरूपी	गुरु-भारतीम्	= गुरुदेव की
अम्भोधि-	= समुद्र के		वाणी को
समुत्तरण-	= पार ले जाने में	वन्दे	= प्रणाम करता
तारिणीम्	= नौका के समान		हूँ ॥१॥
विचित्र-	= विचित्र		

* रहस्य संप्रदाय के आधार पर परमेश्वर की अनुग्राहिका शक्ति को वास्तव में गुरु-भारती कहते हैं ; और इसी अनुग्राहिका शक्ति के फलस्वरूप, स्वरूप-साक्षात्कार के समय जिन अनेकानेक योग-सिद्धियों की प्राप्ति होती है—उनकी विचित्र अर्थों के साथ उपमा दी गई है । साथ ही पदों का तात्पर्य उन योग-भूमिकाओं से है जिनका अनुभव योगी-जन करते रहते हैं । यही अनुग्राहिका शक्ति भक्त के लिये संशयरूपी समुद्र से पार ले जाने में सफल नौका के समान है ॥ १ ॥

*सदसदनुग्रहनिग्रहगृहीतमुनिविग्रहो भगवान् ।
सर्वासामुपनिषदां दुर्वासा जयति दैशिकः प्रथमः ॥२॥

सत-	= शुभ (तथा)	सर्वासां = सारे
असत्-	= अशुभ रूपी	उपनिषदां = उपनिषदों के
अनुग्रह-	= अनुग्रह (और)	प्रथमः = आद्य
निग्रह-	= निग्रह से	दैशिकः = उपदेशक
गृहीत-	= धारण किये हुए	भगवान् = सर्व-ऐश्वर्य-संपन्न
मुनि-	= ऋषि के	दुर्वासा = प्रभु दुर्वासा की
विग्रहः	= शरीर वाले	जयति = जय हो ॥२॥

त्रैयम्बकाभिहितसन्ततिताप्रपर्णी-
सन्मौक्तिकप्रकरकांतिविशेषभाजः ।
पूर्वे जयन्ति गुरवो गुरुशास्त्रसिन्धु-
कल्पोलकेलिकलनामलकर्णधारोः ॥३॥

*जीव सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर की पाँच शक्तियाँ हैं :—सूष्टि-शक्ति, स्थिति-शक्ति, संहार-शक्ति, निग्रह-शक्ति और अनुग्रह-शक्ति । इन में से पहली तीन शक्तियाँ प्राणियों के कर्मों का आश्रय लेकर ही अपना कार्य करती हैं; किन्तु निग्रह-शक्ति और अनुग्रह-शक्ति के बल शिव की स्वतंत्र इच्छा से ही अपना कार्य करती हैं और जीवों के कर्मों का प्रभाव उन दो शक्तियों पर तनिक मात्र भी नहीं पड़ता है । अनुग्रह-शक्ति के स्पर्श से जीव अपने स्वरूप का साक्षात्कार करने में समर्थ बनता है और निग्रह-शक्ति से उसका पारमार्थिक स्वरूप आच्छादित हो जाता है । इन्हीं दो शक्तियों की ओर यहां संकेत है । कृषि दुर्वासा इन दो शक्तियों से संपन्न थे ॥ २ ॥

+शैव शास्त्र, “त्र्यम्बक, आमर्दक, श्रीनाथ तथा अर्धत्र्यम्बक”—इन साढ़े तीन शाखाओं के द्वारा जगत् में अवतरित हुआ है । अद्वैतप्रधान शैव-शास्त्रों

त्रैयम्बक-	= त्र्यम्बकनाथ की	गुरु-	= गहरे
	शाखा में	शास्त्रसिन्धु-	= शास्त्र रूपी
अभिहित-	= कहे गये		समुद्र की
सन्तति-	= सम्प्रदाय रूपी	कल्लोल-	= लहरों की
ताम्रपर्णी-	= ताम्रपर्णी नदी में	केलि-	= क्रीड़ा के
सत्-	= परमार्थ रूपी	कलना-	= रचने में
मौक्तिक-	= मोती के	अमल-	= निर्मल अर्थात् योग्य
प्रकर-	= समूह की	कर्णधाराः	= नाविक
कांतिविशेष-	= असामान्य दीसि को	पूर्वे	= पिछले
भाजः	= धारण करने वाले	गुरवः	= गुरुजनों की
		जयन्ति	= जय हो ॥३॥

जयति गुरुरेक एव श्रीश्रीकरणो* भुवि प्रथितः ।
तदपरमूर्त्तिर्भगवान् महेश्वरो भूतिराजश्च ॥४॥

भुवि	= जगत् में	श्री	= मोक्ष-लक्ष्मी-
प्रथितः	= विघ्न्यात		संपन्न
एक एव	= अद्वितीय	श्रीकरणः	= श्रीकरणनाथ
गुरुः	= गुरुदेव	जयति	= जयनशील हों

का सम्प्रदाय श्री त्र्यम्बकनाथ जी की शाखा में ही प्रकट हुआ है। त्र्यम्बकनाथ जी की शाखा में अवतरित पूर्व-गुरुजनों की स्तुति की ओर ही इस इलोक में संकेत है ॥ ३ ॥

*शास्त्रों का कथन है कि जब कलियुग के प्रादुर्भूत होने पर समस्त शैव शास्त्रों का संप्रदाय पूर्ण रूप से लुप्तप्राय हुआ था, तब भगवान् शङ्कर जी कंलाश पर्वत में श्रीकरणनाथ जी के रूप में स्वयं प्रकट हुए, और उन्होंने क्रष्ण

च	= और	(तथा)	= एवं
तत्-	= उनके ही	भूतिराजः	= श्री भूतिराज जी
अपरमूर्च्छिः	= दूसरे रूप		की
भगवान्	= भगवान्	(अपि)	= भी
महेश्वरः	= महेश्वर	(जयति)	= जय हो ॥४॥

*श्रीसोमानन्दबोधश्रीमदुत्पलविनिःसृताः ।

जयन्ति संविदामोदसन्दर्भा दिक्प्रसर्पिणः ॥५॥

श्रीसोमानन्द-	= श्री सोमानन्द	दिक्	= भिन्न-भिन्न
	जी के		दिशाओं में
बोध-	= संप्रदाय से	प्रसर्पिणः	= फैले हुए
श्रीमत्-	= और श्रीमान्	संविद्-	= ज्ञान रूपी
उत्पल-	= उत्पलदेव जी से	आमोद-	= सुगन्धि के
विनिःसृताः	= निकले हुए	सन्दर्भाः	= समूहों की
(च)	= और	जयन्ति	= जय हो ॥५॥

दुर्वासा के द्वारा ही समस्त शैव शास्त्रों का संप्रदाय पुनः स्थापित करवाया । अस्तु ; श्रीनाथ जी की भेदाभेदप्रधान शाखा में श्रीमान् महेश्वरनाथ जी हुए हैं और अर्धत्र्यम्बक शाखा में श्रीमान् भूतिराज जी विल्यात हुए हैं । इन्हीं तीन आचार्यों की ओर इस श्लोक में संकेत है ॥४॥

*श्री सोमानन्द जी की बंशावली के विषय में कहा जाता है कि प्रारम्भ में समस्त शैवशास्त्र ऋषियों को कण्ठस्थ हुआ करते थे, इसी से वे अनुग्रहशक्तिशाली बने हुए थे । बाद में कलियुग का आगमन होने पर वे समस्त ऋषिजन दुर्गम पर्वतों की कन्दराओं में जा छिपे, इधर शैवशास्त्रों का संप्रदाय प्रतिदिन लुप्त होने लगा । यह दशा देखकर कैलाश-पर्वत-वासी श्रीकण्ठनाथ जी ने ऋषि दुर्वासा को शैवसंप्रदाय पुनः स्थापित करने के लिये प्रेरित किया । तत्पश्चात् ऋषि दुर्वासा जी ने श्री त्र्यम्बकनाथ नामी एक मानसिक पुत्र उत्पन्न

तदास्वादभरावेशबृंहितां मतिषट्पदीम् ।
गुरोर्लक्षणगुप्तस्य नादसंमोहिनीं नुमः ॥६॥

तद-	= उस ज्ञान की	संमोहिनीं	= मोहित करने
	सुगन्धि के		वाली
आस्वाद-	= रसास्वादन	गुरोः	= गुरुदेव
	की	लक्षणगुप्तस्य	= लक्षणगुप्त
भर-	= अधिकता के	जी की	
आवेश-	= आवेश से	मति-	= बुद्धिरूपिणी
बृंहितां-	= बढ़ी हुई	षट्पदीम्	= भौंरी की
(एवं)	= तथा	(वयं)	= हम
नाद-	= व्याख्यान- रूपी भिन- भिनाहट से	नुमः	= स्तुति करते हैं ॥६॥

सदाभिनवगुप्तं यत्पुराणं च प्रसिद्धिमत् ।
हृदयं तत्परोल्लासैः स्वयं स्फूर्जत्यनुत्तरम् ॥७॥

किया जिन्होंने अद्वैत-प्रधान शैव शास्त्रों को संसार-मंडल में प्रकाशित किया । इसी भाँति चौदह मानसिक सिद्ध उत्पन्न हुए । इस बीच में कलियुग का प्रभाव बहुत जोर पकड़ गया था, श्रीतः पंद्रहवां मानसिक पुत्र, जो समस्त शैवशास्त्रों का ज्ञाता था, अपना मानसिक पुत्र उत्पन्न करने में असमर्थ रहा । “शैवशास्त्रों का संप्रदाय फिर से लुप्त न हो जाय” इस उद्देश्य को समक्ष रख कर उन्होंने एक ब्राह्मण कथा से विवाह किया, जो समस्त गुणों से संपन्न थी । अपनी भार्या से उन्हें एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम संगमादित्य था । इसके पश्चात् इनका पुत्र वर्षादित्य, उनका पुत्र अरुणादित्य हुआ । अरुणादित्य के पुत्र आनन्दादित्य हुए । इन्हों के सुपुत्र श्री सोमानन्द जी हुए हैं और उनके शिष्य श्री-उत्पलदेवाचार्य हुए हैं ॥ ५ ॥

यत्	= जो	तत् -	= वही
अभिनवगुप्तं	= अभिनवगुप्त	अनुत्तरम्	= अति उत्तम
	द्वारा प्रति-	(हृदयं)	= शास्त्ररूपी हृदय
	पादित	पर-	= महान्
हृदयं	= (शास्त्ररूपी)	उल्लासैः	= उल्लासों से
	हृदय	स्वयं	= आप ही आप
सदा	= सदैव	स्फूर्जति	= विकास को
पुराणं	= पुराना		प्राप्त होता
च	= और		है ॥७॥
प्रसिद्धिमत्	= विख्यात हुआ है		

अभिनवरूपा शक्तिः तद्गुप्तो यो महेश्वरो देवः ।
तदुभययामलरूपमभिनवगुप्तं* शिवं वन्दे ॥८॥

(या)	= जो	यः	= जो
शक्तिः	= परा शक्ति	महेश्वरः देवः	= महादेव जी
अभिनवरूपा	= नित नये रूप वाली	तत् -	= उस पराशक्ति से
(अस्ति)	= है	गुप्तः	= सुरक्षित हैं
(च)	= और	तदुभय-	= उन दोनों

* अतः पराशक्ति और परमशिव की पारस्परिक संघटरूपता ही अभिनवगुप्त-पद का वास्तविक अर्थ है । अथवा इलेषालङ्कार का आश्रय लेकर इस श्लोक में आचार्य अभिनवगुप्त जी की ओर भी संकेत है, यतः वे भी शिवशक्तिसमावेश से संपन्न थे । इस प्रकार उन्होंने अपने नाम को सार्थक बना कर जगत् में प्रसिद्ध किया ॥ ८ ॥

स्तुति-चन्द्रिका

५

यामल-	= मिले जुले	शिवं	= शिव जी
रूपम्	= रूप वाले		महाराज को
अभिनवगुप्तं	= अभिनवगुप्त-	वन्दे	= मैं प्रणाम करता हूँ ॥८॥

यः पूर्णानन्दविश्रान्तसर्वशास्त्रार्थपारगः ।

श्रीक्षेमराजः सो दिश्यादिष्टं मे गुरुरुत्तमः ॥९॥

यः	= जो	सः	= वह (मेरे)
पूर्णानन्द-	= परमानन्द में	उत्तमः	= उत्कृष्ट
विश्रान्त-	= विश्रांत होने	गुरुः	= गुरु-देव
	के कारण	श्रीक्षेमराजः	= श्री क्षेमराजजी
सर्व-	= सभी	मे	= मुझे
शास्त्रार्थ-	= शास्त्रों के	इष्टं	= अभीष्ट पद का
	अर्थों के		मार्ग
पारगः	= पारंगत हैं	दिश्यात्	= दिखायें ॥९॥

श्रीवसुगुप्तमहागुरुसोमानन्दप्रभूतपलाचार्यान् ।

अभिनवगुप्तं नाथं वन्दे श्रीक्षेमराजञ्च ॥१०॥

(अहं)	= मैं	उत्पलाचार्यान्	= और उत्पल-
श्रीवसुगुप्त-	= श्री वसुगुप्त-		देव जी इन
	नामी		तीन आचार्यों
महागुरु-	= महान् गुरु	(एवं)	= तथा
सोमानन्दप्रभु-	= सोमानन्दप्रभु	नाथं	= स्वामी

अभिनवगुप्तं	= अभिनव-	श्रीकेमराजं	= श्रीमान् केम-
गुप्त जी			राज जी की
च	= और	वन्दे	= वन्दना करता हूँ

॥१०॥

नमो निखिलमालिन्यविलापनपटीयसे ।

महामाहेश्वराय श्रीरामाय गुरुमूर्तये ॥११॥

निखिल-	= समृचे	गुरुमूर्तये	= गुरु-मूर्ति-
मालिन्य-	= पापरूपी मैल		स्वरूप
	को	श्रीरामाय	= श्री राम जी
विलापन-	= दूर करने में		को
पटीयसे	= बड़े प्रवीण	नमः	= नमस्कार
महामाहेश्वराय	= महेश्वर के	(अस्तु)	= हो ॥११॥
	बड़े भक्त		

अदृष्टविग्रहागतं* मरीचिचकविस्तरम् ।

अनुग्रहैककारणं नमाम्यहं गुरुक्रमम् ॥१२॥

अहं	= मैं	मरीचिचक-	= शक्ति चक्र के
अदृष्ट-	= अप्रकट	विस्तरम्	= विस्तार-
विग्रह-	= रूप में		स्वरूप
आगतं	= आये हुए	(एवं)	= तथा

* कहा भी है कि—

“ मनुष्यदेहमात्थाय छन्नास्ते परमेश्वराः । ”

अर्थात् मनुष्य शरीर को धारण करके परमेश्वर ही गुरु रूप में गुप्त रूप से ठहरे हुए हैं ॥ १२ ॥

अनुग्रह-	= दया के	नमामि	= नमस्कार
एककारणं	= एकमात्र कारण		करता हूँ
गुरुक्रमम्	= गुरु-परम्परा को		॥१२॥

तद्देवताविभवभाविमहामरीचि-*

चक्रेश्वरायितनिजस्थितिरेक एव ।

देवीसुतो गणपतिः स्फुरदिन्दुकांतिः

सम्यक्समुच्छलयतान्मम संविदब्धिम् ॥१३॥

तत्-	= उन परा आदि	निजस्थितिः	= अपने स्वरूप
देवता-	= देवताओं के		वाले
विभव-	= ऐश्वर्य से	स्फुरत्-	= धारण किये हुए
भावि-	= होने वाले	इन्दुकांतिः	= चन्द्रमा की
महा-	= महान्		कांति से युक्त
मरीचिचक-	= शक्ति चक्र में	एक एव	= एक ही
ईश्वरायित-	= परमेश्वर के	देवीसुतः	= भगवती के पुत्र
	समान	गणपतिः	= श्रीगणेश जी

* यद्यपि परमेश्वर की शक्तियों की संख्या अनगणित है तथापि मुख्यतया उसकी तीन ही शक्तियाँ मानी गई हैं :—परा, परापरा और अपरा । परमेश्वर की इच्छाशक्ति पराशक्ति, ज्ञानशक्ति परापराशक्ति और क्रियाशक्ति अपराशक्ति कहलाती हैं ॥ १३ ॥

† इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि जैसे चन्द्रमा के उदय होने पर ही समुद्र उछलने लगता है ; इसी भाँति श्रीगणेश जी भी मेरे ज्ञानरूपी समुद्र को उछलायें ॥ १३ ॥

मम	= मेरे	सम्यक्	= भली भाँति
संविदविधम्	= ज्ञानरूपी समुद्र को	समुच्छलयतात्	= उछलायें॥३॥

नमः कारुण्यदेहाय वीराय शुभदन्तिने ।

भक्तिगम्याय भक्तानां दुःखहर्त्रे नमोऽस्तु ते ॥१४॥

कारुण्यदेहाय	= दयास्वरूप	शुभ-	= कल्याण-
वीराय	= बड़े वीर		कारक अथवा
भक्ति-	= भक्ति द्वारा		श्वेत
गम्याय	= प्राप्त किये जा सकने वाले	दन्तिने	= दान्तों वाले
भक्तानां	= अपने भक्तों के	ते	= आप गणेश
दुःखहर्त्रे	= दुःखों को दूर करने वाले	नमः	= जी को
		अस्तु	= नमस्कार
			= हो ॥१४॥

यस्योन्मेषनिमेषाभ्यां* जगतः प्रलयोदयौ ।

तं शक्तिचक्रविभवप्रभवं शङ्करं स्तुमः ॥१५॥

(वयं)	= हम	प्रभवं	= उत्पत्ति-स्थान
शक्तिचक्र-	= शक्तिचक्र संबंधी	तं	= उस
विभव-	= ऐश्वर्य के	शङ्करं	= महादेवजी की

*पाठक इस श्लोक को देख कर कहीं भ्रमित न हों कि ईश्वर के उन्मेष से जगत का नाश और निमेष से जगत का उदय कैसे होता है । पारमार्थिक दृष्टि से ईश्वर के स्वरूप का विकास ही जगत के नष्ट होने का हेतु है और उसके स्वरूप का निमेष ही जगत के उदय का कारण है ॥ १५ ॥

स्तुमः	= स्तुति करते हैं	(क्रमेण)	= क्रमशः
यस्य	= जिस के	जगतः	= संसार का
उन्मेष-	= उन्मेष और	प्रलयोदयौ	= नाश और उदय
निमेषाभ्यां	= निमेष से	(भवतः)	= होता है ॥१५॥

नमः शिवाय सततं पञ्चकृत्यविधायिने* ।

चिदानन्दघनस्वात्मपरमार्थवभासिने ॥१६॥

पञ्च	= (सृष्टि, स्थिति, संहार, पिधान और अनुग्रह इन) पांच	स्वात्मपरमार्थ-	= अपने स्वरूप के तत्त्व को
कृत्य-	= कृत्यों की	अवभासिने	= उज्ज्वल रूप में
विधायिने	= रचना करने वाले	शिवाय	= शिवजी महा- राज को
चिदानन्दघन	= चिदानन्दघन रूपी	सततं	= सदा
		नमः	= नमस्कार
		(अस्तु)	= हो ॥१६॥

आश्यानं चिद्रसस्याघं साकारत्वमुपागतम् ।

जगद्रूपतया वन्दे प्रत्यक्षं भैरवं वपुः ॥१७॥

* सृष्टि, स्थिति, संहार, पिधान तथा अनुग्रह—ये पांच परमेश्वर के महान् कृत्य हैं। इन पांच कृत्यों के द्वारा परमेश्वर क्रमपूर्वक जगत को उत्पन्न करता है, पालन करता है और पश्चात् इस जगत का संहार करने के अनन्तर इसको संस्काररूपता से अपने भीतर स्थापित करता है जिसका नाम पिधान है। कदाचित् अपनी अप्रतिहता स्वातंत्र्यशक्ति के द्वारा इस संस्कार का भी मूलोच्छेदन करता है—यह पांचवाँ कृत्य अनुग्रह कहलाता है ॥ १६ ॥

(यत्)	= जो	(तत्)	= उस
आश्यानं	= घनीभूत	प्रत्यक्षं	= प्रत्यक्ष
चिद्रसस्य	= चित्ररस का	भैरवं	= भैरव के
ओंघं	= समूह ही	वपुः	= स्वरूप को
जगदूरूपतया	= संसार के रूप में	(अहं)	= मैं
साकारत्वं	= साकारता को	वन्दे	= प्रणाम करता हूँ
उपागतम्	= प्राप्त हुआ है		॥१७॥

भीरूणामभयप्रदो भवभयाकन्दस्य हेतुस्ततो
 हृद्धाम्नि प्रथितश्च भीरवरुचामीशोऽन्तकस्यान्तकः ।
 भेरं वायति यः सुयोगिनिवहस्तस्य प्रभुभैरवो
 विश्वस्मिन्भरणादिकृद्विजयते विज्ञानरूपः परः ॥१८॥

भीरूणाम्	= सांसारिक दुःखों से डरे हुए मनुष्यों को	हृत्	= उनके हृदय रूपी
(यः)	= जो	धाम्नि	= गृह में
अभयप्रदः	= अभय-दान देने वाला है	प्रथितः	= प्रकट होता है
भव-भय-	= संसार के भय से	च	= और जो
आक्रन्दस्य	= होने वाली चिल्लाहट का	भीरव	= भयमीत पुरुषों की
(यः) हेतुः	= जो कारण है	रुचाम्	= अभयदान रूपी
ततः	= और उसी कारण से	रुचाम्	= अभिलाषा को पूर्ण करने में
		ईशः	= स्वतंत्र है
		(यः)	= जो
		अन्तकस्य	= महाकाल का भी

अन्तकः	= संहार करने	(यः)	= जो
	वाला है	प्रभुः	= स्वामी है
(एवं)	= तथा	(इत्येवं)	= ऐसे लक्षणों से
सुयोगि-	= उत्तम योगियों		युक्त
	का	विश्वस्मिन्	= संसार में
निवहः	= समूह	भरणादिकृत्	= पालन-पोषण
यः	= जो कि		करने वाले
भेरं	= काल को भी	विज्ञानरूपः	= विज्ञान स्वरूप
वायति	= सुखाते हैं अर्थात्	परः भैरवः	= परम भैरव की
	संहार करते हैं	विजयते	जय हो ॥१८॥
तस्य	= उन का भी		

उद्धरत्यन्धतमसाद्विश्वमानन्दवर्षिणी ।

परिपूर्णा जयत्येका देवी चिच्छन्द्रचन्द्रिका ॥१६॥

(सा)	= वह	जयति	= जयनशील
आनन्दवर्षिणी	= आनन्द वर्-		हो
	साने वाली	(या)	= जो
परिपूर्णा	= परिपूर्ण	देवी	= देवी
	स्वरूप वाली	विश्वं	= संसार को
एका	= अनुपम	अन्धतमसात्	= अज्ञान रूपी
चिच्छन्द्र-	= चित् रूपी		अन्धकार से
	चन्द्रमा की	उद्धरति	उद्धार करती
चन्द्रिका	= ज्योत्स्ना		है ॥१६॥

द
आनन्दसुन्दरपुरन्धरमुक्तमाल्यं
मौलौ हठेन निहितं महिषासुरस्य ।
पादाम्बुजं* भवतु मे विजयाय मञ्जु-
मञ्जीरशिञ्जितमनोहरमन्विकायाः ॥२०॥

मञ्जीर-	= मञ्जीरों की	पुरन्धर-	= इन्द्र द्वारा
शिञ्जित-	= घनघनाहट के	मुक्तमाल्यं	= उपहार की गई
	कारण		माला वाला
मनोहरं	= मनोहारी	अम्बिकायाः	= माता दुर्गा जी
महिषासुरस्य	= महिषासुर के		का
मौलौ	= सिर पर	मञ्जु-	= सुन्दर
हठेन	= आग्रहपूर्वक	पादाम्बुजं	= चरण कमल
निहितं	= रखा गया	मे	= मेरी
(अत एव)	= और इसी कारण	विजयाय	= विजय के लिये
आनन्द-	= आनन्द से	भवतु	= हो ॥२०॥
सुन्दर-	= सुन्दर अर्थात्		
	प्रसन्न बने हुए		

*पौराणिक किंवदन्तो है कि महिषासुर नामक बलशाली दैत्य इन्द्र भग्नाराज को बहुत सताया करता था। इस दुःख से छुटकारा प्राप्त करने के लिए इन्द्र ने श्री दुर्गाजी की शरण ली; भवत के हितार्थ देवी दुर्गा सिंहारूढ़ बन कर महिषासुर के समीप आई तथा उसके सिर को अपने चरणों से ऐसा दबाया कि वह पातल में जा पहुँचा। यह देखकर इन्द्र हर्षित हुए और दुर्गाजी के चरणों पर शिर झुकाने लगे; ऐसा करते हुए उनकी मोतियों की माला दुर्गाजी के चरणों पर गिर पड़ी। इस श्लोक में इन्द्रसंबन्धिनी मोतियों की माला से शोभित दुर्गाजी के उन्हीं चरणों के ध्यान की ओर संकेत है।

ये देवि दुर्धरकृतान्तमुखान्तरस्थाः
ये कालि कालघनपाशनितान्तवद्वाः ।
ये चरिण चण्डगुरुकलमषसिन्धुमग्ना-
स्तान्पासि मोचयसि तारयसि स्मृतैव ॥२१॥

देवि	= हे भगवती !	चण्ड-	= भयानक और
ये	= जो लोग	गुरुकलमष-	= बड़े बड़े पापों के
दुर्धर-	= असहा	सिन्धु-	= समुद्र में
कृतान्त-	= मृत्यु के	मग्नाः	= इबे हुए हैं
मुखान्तर-	= मुख में	(तैः)	= उनके द्वारा
स्थाः	= पड़े हुए हैं	स्मृता एव	= स्मरण किये जाने
कालि	= हे कालिका !		पर ही
ये	= जो	(त्वं)	= तुम
काल-	= महाकाल के	तान्	= उन को
घनपाश-	= बड़े भारी फंडे में	(क्रमेण)	= क्रमशः
नितान्त-	= पूर्णरूप में	पासि	= बचाती हो
वद्वाः	= फंसे हुए हैं	मोचयसि	= छुड़ाती हो और
(च)	= और	तारयसि	= पार ले जाती
चरिण	= हे चरिणके !		हो ॥२१॥
ये	= जो		

ब्रह्मागण्डबुद्बुदकदम्बकसंदूकुलोऽयं
मायोदधिर्विविधदुःखतरङ्गमालः ।
आश्र्यमम्ब भट्टिति प्रलयं प्रयाति
त्वद्यानसंततिमहावडवामुखाग्नौ ॥२२॥

अम्ब	= हे माता-	त्वत्	= आपके
ब्रह्मार्ण-	= ब्रह्मार्ण रूपी	ध्यान-	= ध्यान की
बुद्भुद-	= बुलबुलों के	संतति-	= परम्परा रूपी
कदम्बक-	= समुदाय से	महा-	= बड़ी भारी
संकुलः	= भरा हुआ	वडवामुखाण्डौ	= वडवाग्नि के
(च)	= और		मुख में पड़ते ही
विविध-	= भिन्न भिन्न	भट्टिति	= तत्क्षण
	प्रकार के	प्रलयं	= नाश को
दुःख-	= दुःखों रूपी	प्रयाति	= ग्रास हो जाता
तरङ्गमालः	= लहरों की माला	(इति)	= यह तो
	को धारण करने	आश्र्यम्	= बड़े आश्र्य की
	वाला		वात है ॥२२॥
अयं	= यह		
माया-उदधिः	= माया रूपी		
	समुद्र		

न ध्यायतो न जपतः स्याद्यस्याविधिपूर्वकम् ।
एवमेव शिवाभासस्तं नमो भक्तिशालिनम् ॥२३॥

तं	= उस	न जपतः	= और जपादि न
भक्तिशालिनं	= भक्तिशाली जन		करने पर
	को	अविधिपूर्वकं	= ध्यानादि विधि
नमः	= नमस्कार हो		का पालन किये
यस्य	= जिसे		बिना
न ध्यायतः	= न ध्यान करने	एवमेव	= अकर्त्त्वात् ही
	पर		

शिवाभासः	= शिवजी महा-	स्यात्	= हो जाय
	राज का		॥२३॥
	साक्षात्कार		

सर्वे एव भवत्त्वाभेतुर्भक्तिमतां विभो ।

संविन्मार्गोऽयमाहाददुःखमोहैस्त्रिधा स्थितः ॥२४॥

विभो	= हे व्यापक प्रभु !	संविन्मार्गः	= नीलपीतादि ज्ञान
आहाद-	= सत्त्वप्रधान सुख से		रूपी संसार का मार्ग
दुःख-	= रजप्रधान दुःख से	भक्तिमतां	= भक्तजनों के लिए
मोहैः	= और तमोगुण-प्रधान मोह से	भवत्	= आप के स्वरूप की
त्रिधा	= तीन प्रकार से	लाभ-	= प्राप्ति का ही
स्थितः	= ठहरा हुआ	हेतुः	= साधन
अथम्	= यह	(भवति)	= बन जाता है
सर्वः	= सारा		॥२४॥

सर्वाशङ्काशनिं सर्वालच्छमीकालानलं तथा ।

सर्वामंगल्यकल्पान्तं मार्गं माहेश्वरं नुमः ॥२५॥

सर्व-	= सभी	कालानलं	= कालाग्नि के तुल्य
आशङ्का-	= आशङ्काओं का नाश करने के लिये	तथा	= और
अशनिं	= वज्र के समान	सर्व-	= सभी
सर्व-	= समूची	अमंगल्य-	= अमंगलता को नष्ट करने के लिये
अलच्छमी-	= दरिद्रता को भस्म करने में	कल्पान्तं	= कल्पान्त के समान बने हुए

माहेश्वरं	= महेश्वर भगवान् के	नुभः	= हम स्तुति करते हैं ॥२५॥
मार्गं	= सत्पथ की		

दुःखान्यपि सुखायन्ते विषमप्यमृतायते ।
मोक्षायते च संसारो यत्र मार्गः स शाङ्करः ॥२६॥

यत्र	= जिस पथ पर चलने से	संसारः	= (यह भयंकर) संसार ही
दुखानि अपि	= अनन्त दुःख भी	मोक्षायते	= मोक्ष की प्राप्ति
सुखायन्ते	= सुखरूपतां में ही दीख पड़ते हैं		का साधन बन जाता है
विषमपि	= विष भी	सः	= वही
अमृतायते	= अमृत बन जाता है	मार्गः	= मार्ग तो
च	= और	शाङ्करः	= शङ्कर का मार्ग कहलाता है

॥२६॥

देव प्रसीद यावन्मे त्वन्मार्गपरिपन्थिकाः ।
परमार्थमुषो वश्या भवेयुः गुणतस्कराः ॥२७॥

देव	= हे देव !	मुषः	= छीनने वाले
त्वन्मार्ग-	= आपके पार- मार्थिक पथ में	गुणतस्कराः	= इन्द्रिय रूपी चार
परिपन्थिकाः	= विघ्न डालने वाले	यावत्	= जितने समय तक
(एवं)	= तथा	मे	= मेरे
परमार्थ-	= परमार्थ-धन को	वश्याः	= वशीभूत

भवेयुः	= हो जायें	प्रसीद	= मुझ पर प्रसन्न
(तावत)	= तब तक		रहें अर्थात् मेरी
(त्वं)	= आप		सहायता करते

रहें ॥२७॥

कदा कामपि तां नाथ तव वल्लभतामियाम् ।
यथा मां प्रति न क्वापि युक्ते स्यात्पलायितुम् ॥२८॥

नाथ	= हे प्रभो !	मां प्रति	= मेरे प्रति
(अहं)	= मैं	ते	= तुम्हारा
तां	= उस	पलायितुं	= (अपने स्वरूप को)
कामपि	= अलौकिक		छिपाना
तव	= तुम्हारे	क्वापि	= कभी भी
वल्लभतां	= ग्रेमभाव को	युक्ते	= उचित
कदा	= भला कब	न	= नहीं
इयाम्	= प्राप्त करूँगा	स्यात्	= होगा ॥२८॥
यथा	= जिस ग्रेमभाव के		
	ग्रेमभाव से		

ब्रह्मेन्द्रविष्णुनिर्व्यूढजगत्संहारकेलये* ।
आश्र्यकरणीयाय नमस्ते सर्वशक्तये ॥२९॥

*श्राव एव सारे ब्रह्मा आदि देवता जगत का निर्माण करने के अनन्तर इसी भय से कि “अब प्रभु इस समस्त संसार का नाश करेंगे” भगवान शङ्करजी की ओर ही नम्रभाव से देखते रहते हैं । सारे विश्व का संहार करने से प्रभु को निर्दय नहीं समझना चाहिए, बल्कि यह जानना चाहिये कि महादेवजी इस अपनी संहार-लीला से सारे जगत को यही उपदेश देते हैं कि इस संसार में जो कुछ भी उत्पन्न होता है उसका नाश अवश्यम्भावी है ; इत्यतः मेरे पारमार्थिक स्वरूप को छोड़ कर अन्य सभी सांसारिक घटपटादि पदार्थ असत्य हैं और इन पर तनिक मात्र भी आस्था नहीं ।

(प्रभो)	= हे भगवन् !	(अतएव)	= अत एव
ब्रह्मा-	= ब्रह्मा	आश्वर्य-	= अद्भुत कर्मों को
इन्द्र-	= इन्द्र	करणीयाय	= करने वाले
विष्णु-	= और नारायण के द्वारा	ते	= आप
निरव्यूढ-	= भलीभांति सुरचित	सर्वशक्तये	= सर्वशक्तिमान् प्रभु
जगत्-	= इस संसार का	को	
संहार-	= नाश करने की	नमः	= नमस्कार हो
केलये	= क्रीड़ा करने में रसिक बने हुए		॥२६॥

नमस्तेभ्योऽपि ये सोमकलाकलितशेखरम् ।
नाथं स्वप्नेऽपि पश्यन्ति परमानन्ददायिनम् ॥३०॥

ये	= जो भक्त-जन	नाथं	= प्रभु शङ्कर जी को
सोमकला-	= चन्द्रमा की कला से	स्वप्नेऽपि	= स्वप्न में भी
कलितशेखरम्	= सुसज्जित सिर वाले	पश्यन्ति	= देखते हैं
परमानन्द-	= परम आनन्द	तेभ्यः	= उनको
दायिनम्	= दिलाने वाले	अपि	= भी
		नमः	= नमस्कार
		(अस्तु)	= हो ॥३०॥

क्रमेण कर्मणा केन क्या वा प्रज्ञया प्रभो ।
ज्ञेयोऽसीत्युपदेशोन प्रसादः क्रियतां मयि ॥३१॥

प्रभो = हे स्वामी !
 (त्वं) = आप
 केन = किस
 कर्मणा = कर्म से
 वा = तथा
 क्या = कैसी
 प्रज्ञया = बुद्धि द्वारा

क्रमेण = निर्बाध रूप में
 ज्ञेयःअसि = जाने जा सकते हैं
 इति = इस बात का
 उपदेशेन = उपदेश करने का
 मयि = मुझ पर
 प्रसादः = अनुग्रह
 क्रियताम् = कीजिए ॥३१॥

किमशक्तः करोमीति सर्वत्रानध्यवस्थतः ।

सर्वानुग्राहिका शक्तिः शाङ्करी शरणं मम ॥३२॥

(अहं) = मैं
 अशक्तः = निर्बल तथा
 सामर्थ्यहीन
 किं करोमि = क्या कर सकूँ?
 इति = इस प्रकार
 सर्वत्र = हर एक बात में
 अनध्यवस्थतः = विश्वास न
 रखने वाले
 मम = मेरे लिये

सर्व = सब प्राणियों
 पर
 अनुग्राहिका = दया करने
 वाली
 शाङ्करी = शिवजी महाराज
 की
 शक्तिः = शक्ति ही
 शरणं = रक्षाकारिणी
 (भवतु) = बने ॥३२॥

क्षमः कां नापदं हन्तुं कां दातुं संपदं न वा ।

योऽसौ स दयितोऽस्माकं देवदेवो वृषध्वजः ॥३३॥

यः = जो
 वृषध्वजः = (जिसकी धजा बैल
 है) शिवजी

कां आपदं = किस आपत्ति को
 हन्तुं = दूर करने
 वा = और

कां	= किस	असौ	= यह प्रत्यक्षस्वरूप
संपदं	= संपत्ति को	देवदेवः	= देवताओं के प्रभु
दातुं	= देने में	अस्माकं	= हमारे
क्षमः न	= समर्थ नहीं हैं	दयितः	= प्रियतम हैं ॥३३॥
सः	= वही		

संग्रहेण सुखदुःखलक्षणं

मां प्रति स्थितमिदं श्रुणु प्रभो ।

सौख्यमेव *भवता समागमः

स्वामिना विरह एव दुःखिता ॥३४॥

प्रभो	= हे स्वामी !	समागमः	= सहवास
श्रुणु	= सुनिये	एव	= ही
संग्रहेण	= संक्षेप से	(मम)	= मेरा
मां प्रति	= मेरे विषय में	सौख्यम्	= सुख है
स्थितम्	= ठहरा हुआ	(च भवता)	= और आप
सुखदुःख-	= सुख और	स्वामिना	= स्वामी का
लक्षणम्	दुःख का लक्षण	विरहः एव	= वियोग ही
इदम्	= यह है	(मम)	= मेरा
भवता	= आप के	दुःखिता	= दुःख है
	साथ		॥३४॥

*वास्तव में प्रभु का समावेश ही उसका पारमार्थिक समागम कहलाता है । अब जो सांसारिक विषयों में किंचित् सुखाभास सा होता है, वह क्षण-भंगुर और नाशवान होने के कारण वास्तव में असुख ही है । यथार्थ सुख-रूपता तो केवल उसी प्रभु के समावेशात्मक समागम में है । इसी सुख को वेदादि सभी शास्त्रों में “भूमा” नाम से आदरपूर्वक वर्णन किया गया है । इसी समावेशात्मक समागम की ओर यहाँ संकेत है ।

सततमेव भवच्चरणाम्बुजा-
करचरस्य हि हंसवरस्य मे ।
उपरि मूलतलादपि चान्तरा-
दुपनमत्वज भक्तिमृणालिका ॥३५॥

अज	= हे जन्म रहित प्रभो !	मृणालिका = मृणालिका
भवत्	= आप के	उपरि = ऊपर से
चरणाम्बुज =	चरण कमलों के	मूलतलात् = लता की जड़ के
आकर	= सरोवर में	स्थान से
चरस्य	= विहार करने वाले	च = और
मे	= मेरे आत्मा रूपी	अन्तरादपि = बीच में से भी
हंसवरस्य	= उत्तम हंस को	सततम् एव = सदा ही
(भवत्)	= आप की	उपनमतु = उठ कर उपलब्ध
भक्ति-	= भक्तिरूपिणी	हो जाय ॥३५॥

त्वद्गुपुःस्मृतिसुधारसपूर्णे
मानसे तव पदाम्बुजयुग्मम् ।
मामके विकसदस्तु सदैव
प्रसवन्मधु किमप्यतिलोकम् ॥३६॥

त्वत्	= आप के	पूर्णे	= मेरे हुए
वपुः-	= स्वरूप की	मामके	= मेरे
स्मृति-	= स्मृति रूपी	मानसे	= मन में
सुधारस-	= अमृत के रस से	तव	= आप के

पदाम्बुज-	= चरण कमलों का	प्रसवन्	= वहाता हुआ
युग्मम्	= जोड़ा	सदैव	= सदा के लिए
किमपि	= किसी अकथनीय	विकसत्	= खिला
अतिलोकं	= अलौकिक	अस्तु	= रहे ॥३६॥
मधु	= आनन्दरूपी पुष्प- रस को		

अप्युपार्जितमहं त्रिषु लोके-
ष्वाधिपत्यममरेश्वर मन्ये ।
नीरसं तदखिलं भवदछिघ-
स्पर्शनामृतरसेन विहीनम् ॥३७॥

अमरेश्वर	= हे देवेश !	उपार्जितम्	= प्राप्त किये गये
अहं	= मैं	तत्	= उस
भवत्	= आपके	अखिलं	= सम्पूर्ण
अछिघ-	= चरणों के	त्रिषु लोकेषु	= तीनों लोकों के
स्पर्शन-	= स्पर्श से उत्पन्न हुए	आधिपत्यं	= स्वामित्व का
अमृतरसेन	= अमृत के रस से	अपि	= भी
विहीनम्	= रहित	नीरसं मन्ये	= नीरस समझता हूँ ॥३७॥

* परमात्मा की ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति ही उनके चरणयुगल कहलाते हैं । स्वरूप साक्षात्कार के समय उनकी इन दो शक्तियों के विकास का अनुभव होता है, एवं चिदानन्दरूपी अमृतरस की प्राप्ति होती है । भक्त-जन ही इस अलौकिक अमृतरस का आस्वादन करते हैं जिससे उनको समस्त सांसारिक उपभोग नीरस और तुच्छ दिखाई देते हैं ।

विकसतु स्ववपुर्भवदात्मकं
समुपयान्तु जगन्ति ममाङ्गताम् ।
ब्रजतु सर्वमिदं द्वयवल्गितं
*स्मृतिपथोपगमेऽप्यनुपाख्यताम् ॥३८॥

स्ववपुः	= मेरी आत्मा	सर्वं	= समस्त
भवदात्मकं	= आप का स्वरूप	द्वय-	= भेद प्रथा का
(भूत्वा)	= बन कर	वल्गितं	= विकास
विकसतु	= खिल उठे	स्मृति-पथ-	= स्मृति पथ में
जगन्ति	= यह सारा जगत्	उपगमे अपि	= जाकर भी
मम	= मेरा	अनुपाख्यतां	= उपाख्याराहित्य
अङ्गताम्	= अंग		को ही
समुपयान्तु	= बन जाये	ब्रजतु	= प्राप्त हो ॥३८॥
इदं	= यह		

जय देव नमो नमोऽस्तु ते
सकलं विश्वमिदं तवाश्रितम् ।
जगतां परमेश्वरो भवान्
परमेकः शरणागतोऽस्मि ते ॥३९॥

देव	= हे द्योतना-	जय	= आपकी जय
	त्मक प्रभो !		हो

* यद्यपि शैव-योगियों को समस्त द्वैत-प्रथा नष्टप्राय भी हुई होती है, तथापि संस्काररूपतया उस द्वैत-प्रथा का अस्तित्व बना ही रहता है। ऐसी दशा को समक्ष रख कर भक्त अपने प्रभु से यह प्रार्थना करता है कि आप के अनुग्रह से मुझे यह द्वैत का विकास स्मृति-पट पर भी अंकित न होने पाये।

ते	= आप को	जगताम्	= सारे जगत के
नमो नमः	= बार बार नमस्कार	परमेश्वरः	= स्वामी हैं
अस्तु	= हो	(इत्यतः)	= इस लिए
इदं	= यह	(अहं)	= मैं
सकलं	= सारा	परम्	= केवल
विश्वं	= संसार	एकः	= एक ही
तव	= आप के	ते	= आपकी
आश्रितं	= सहारे ठहरा है	शरणागतोऽस्मि	= शरण में आया हूँ
भवान्	= आप		

॥३६॥

त्वद्भक्तिपनदीधिति-
संस्पर्शवशान्मैष दूरतरम् ।
चेतोमणिर्विमुञ्चतु

रागादिकतस्वद्विकणान् ॥४०॥

एष	= यह	रागादिक-	= रागादिक
मम	= मेरा		वासनाओं के
चेतः-	= हृदयरूपी	तस-	= जले हुए
मणिः	= सूर्यकान्त रत्न	वद्विकणान्	= संस्कार रूपी
त्वत्	= आप की		अंगारों के जरों
भक्ति-	= भक्तिरूपी		को भी
तपन-	= सूर्य की	दूरतरम्	= बहुत दूर
दीधिति-	= किरणों से	विमुञ्चतु	= हटा दे ॥४०॥
संस्पर्शवशात्	= स्पर्शित होकर		

गलतु विकल्पकलङ्कावलिः समुद्घसतु हृदि निर्गलता ।
भगवन्नानन्दरसप्लुतास्तु मे चिन्मयी मूर्तिः ॥४१॥

भगवन्	= हे भगवन् !	समुद्घसतु	= चमक उठे
(मे)	= मेरे	(च)	= और
विकल्प-	= संकल्प विकल्प-	मे	= मेरी
	रूपी	चिन्मयी	= चैतन्यमयी
कलङ्कावलिः	= कलंक की माला	मूर्तिः	= मूर्ति
गलतु	= नष्ट हो जाय	आनन्दरस	= आनन्द के रस से
हृदि	= मेरे हृदय में	प्लुता	= आसावित
निर्गलता	= पूर्ण स्वतंत्रता का भाव	अस्तु	= हो जाय ॥४१॥

तस्मिन्पदे भवन्तं सततमुपश्लोकयेयमत्युच्चैः ।
हरिहर्यश्विरिश्चा अपि यत्र बहिः प्रतीक्षन्ते ॥४२॥

(अहं)	= मैं	यत्र	= जहाँ
तस्मिन्	= उस आप के	हरि-	= भगवान् विष्णु
पदे	= परम धाम में	हर्यश्व-	= इन्द्र और
सततं	= सदा	विरिश्चाः	= ब्रह्मा
अत्युच्चैः	= बहुत ऊचे स्वर में	अपि	= भी
भवन्तं	= आप की	बहिः	= बाहिर
उपश्लोकयेयं	= स्तुति श्लोकों द्वारा कर्तुं	(एव)	= ही
		प्रतीक्षन्ते	= प्रतीक्षा करते हैं ॥४२॥

क नु रागादिषु रागः क च हरचरणाम्बुजेषु रागित्वम्।
इत्थं विरोधरसिकं बोधय हितममर मे हृदयम् ॥४३॥

अमर	= हे प्रभो !	रागित्वम्	= भक्ति !
क नु	= कहाँ	इत्थं	= ऐसी
रागादिषु	= राग आदि	हितम्	= कल्याण की बात
	विषयों के प्रति	विरोधरसिकं	= विरोध में रसिक अर्थात्
रागः	= आसक्ति		= विरोध में फंसे हुए
च	= और		
क	= कहाँ	मे	= मेरे
हर-	= महादेवजी के	हृदयं	= मन को
चरण-अम्बुजेषु	= चरण कमलों के प्रति	बोधय	= समझायें

॥४३॥

तत्तदपूर्वामोदत्वचिन्ताकुसुमवासना दृढ़ताम् ।

एतु मम मनसि यावन्नश्यतु दुर्वासनागन्धः ॥४४॥

(प्रभो)	= हे स्वामी	(तावत्)	= तब तक
तत्तद्	= उस	दृढ़ताम्	= दृढ़भाव को
अपूर्व-	= अनूठी	एतु	= प्राप्त हो जाय
आमोद-	= सुगंधि से युक्त	यावत्	= जब तक कि
त्वत्	= आप के	दुर्वासना	= बुरी वासना
चिन्ता-	= चिन्तन रूपी		रूपिणी
कुसुमवासना	= फूलों की सुगंधि	गन्धः	= दुर्गन्धि
मम	= मेरे	नश्यतु	= समूल नष्ट हो
मनसि	= हृदय में		जाय ॥४४॥

विचरन्योगदशास्वपि विषयव्यावृत्तिवर्त्तमानोऽपि ।
त्वचिन्तामदिरामदतरलीकृतहृदय एव स्याम् ॥४५॥

(नाथ)	= हे नाथ !	(अहं)	= मैं
योग-	= योग संबन्धी	त्वत्-	= आप के
दशासु	= अवस्थाओं में	चिन्ता-	= चिन्तन रूपिणी
विचरन्योग	= विचरण करता हुआ भी	मदिरा-	= मदिरा की
विषय-	= विषयों के	मद-	= मस्ती से
व्यावृत्ति-	= नियमनादि साधनाओं में	तरलीकृत-	= लोल हृदय वाला
वर्त्तमानः	= लगा हुआ	हृदयः	
अपि	= भी	एव	= ही
		स्याम्	= बनूँ ॥४५॥

* समुत्सुकास्त्वां प्रति ये भवन्तं
प्रत्यर्थरूपादवलोक्यन्ति ।
तेषामहो तत्किमुपस्थितं स्था-
त्किं साधनं वा फलितं भवेत्तत् ॥४६॥

त्वां	= आप की	समुत्सुकाः	= लालायित बने
प्रति	= और		हुए

* तात्पर्य यह है कि जिस अलौकिक साधन के द्वारा भक्त-जन आपके स्वरूप को प्रत्येक घटपटादि पदार्थों में करामलकवत् देखते हैं, उस अनुपम साधना को समझना हमारी बुद्धि की सीमा से बाहर है । उस साधना को या तो वे भक्त ही जान सकते हैं अथवा उनके प्रभुदेव ।

ये	= जो भक्त-जन	उपस्थितं	= उपलब्ध
भवन्तं	= आपको	स्यात्	= होता होगा
प्रत्यर्थरूपात्	= प्रत्येक वस्तु में	वा	= और उस
अवलोकयन्ति	= देखते हैं		साधना से
तेषाम्	= उनको	तत् किम्	= वह कौनसी
अहो	= भला		अवस्था
तत्	= वह	फलितं भवेत्	= प्राप्त होती
किं	= कौन-सा		होगी ॥४६॥
साधनं	= साधन		

सदा भवद्देहनिवासस्वस्थो-

अप्यन्तः परं द्व्यात एषं लोकः ।

तवेच्छया तत्कुरु मे यथात्र

त्वदर्चनानन्दमयो भवेयम् ॥४७॥

एषः	= यह	अन्तर्	= भीतर ही भीतर
लोकः	= सांसारिक लोग	द्व्याते	= जलाये जाते
सदा	= सदा		हैं अर्थात्
भवत्-	= आपके		दुःखी होते हैं
देह-	= स्वरूप में	(इत्यतः)	= इस लिये
निवास-	= रहने के कारण	(त्वं)	= आप
स्वस्थः	= स्वस्थ होने पर	तव	= अपनी
अपि	= भी	इच्छया	= इच्छा से
वासनात्मकैः	= सांसारिक	मे	= मेरे लिये
भावैः	= वासनाओं से	तत्कुरु	= ऐसा कीजिये

यथा	= जिस से कि	आनन्द-	= आनन्दरूपता
(अहं)	= मैं		से
अत्र	= इस संसार में	मयः	= युक्त
त्वत्	= आपकी	(एव)	= ही
अर्चन	= पूजा रूपिणी	भवेयम्	= बन जाऊँ

॥४७॥

परं परस्थं गहनादनादि-

मेकं निविष्टं बहुधा गुहासु ।

सर्वालयं सर्वचराचरस्थं

त्वामेव शम्भुं शरणं प्रपद्ये ॥४८॥

(अहं)	= मैं	(च)	= और
गहनात्-	= मायोत्तीर्ण धाम	सर्व-	= सभी
परस्थं	= में ठहरे हुए	चराचरस्थं	= स्थावर जंगम में
परं	= उत्कृष्ट		ठहरे हुए
अनादि	= अनादि	त्वां	= आप
एकं	= अद्वितीय	शरणं	= सब जगत के रक्षक
बहुधा	= अनेक प्रकार के	शम्भुं	= शिवजी महाराज
गुहासु	= हृदय रूपी गुफा- ओं में		को
निविष्टं	= बैठे हुए	एव	= ही
सर्वालयं	= सब के विश्रांति- स्थान	प्रपद्ये	= प्रणाम करता हूँ

॥४८॥

ते पङ्कमङ्गतमात्मनि धावयन्ति
 दिष्ठमण्डलं च परितः परिपावयन्ति ।
 क्लेशान्दणातृणगणानिव लावयन्ति
 ये त्वां प्रकाशवपुषं हृदि भावयन्ति ॥४६॥

ये	= जो भक्त	दिष्ठमण्डलं = सारी दिशाओं को
प्रकाशवपुषं	= प्रकाशस्वरूप	परितः = चारों ओर से
त्वां	= आपका	परिपावयन्ति = पवित्र करते हैं
हृदि	= हृदय में ध्यान	च = और
भावयन्ति	= करते हैं	क्लेशान् = अविद्या आदि क्लेशों को
ते	= वे	त्रुणगणान् = तिनों के समूह की
आत्मनि	= अपने हृदय के	इव = भाँति
अङ्गतं	= बीच में होने वाले	क्लेशात् = क्लेश भर में
पङ्क	= अज्ञान रूपी कीचड़ को	लावयन्ति = काट देते हैं
धावयन्ति	= धो डालते हैं	॥४६॥

मानुष्यनावमधिगम्य विरादवाय

निस्तारकं च करुणाभरणं भवन्तम् ।

यस्याभवद्वरवशस्तरितुं भवाविधं

सोऽहं ब्रह्मामि यदि कस्य विडम्भनेयम् ॥५०॥

चिरात्	= चिरकाल के बाद	भरवशः	= भरोसा
मानुष्य-	= मनुष्य-जन्म रूपी	अभवत्	= हो गया है,
नावं	= नौका को	सः	= वही
अवाप्य	= प्राप्त कर	अहं	= मैं
च	= और	यदि	= यदि
करुणाभरणं	= दया से सुशो- भित	ब्रह्मामि	= (इस भवसागर से पार जाने के बजाय) इब ही
निस्तारकं	= पार ले जाने वाले		जाऊँ
भवन्तं	= आपको	(तर्हि)	= तो
(अवाप्य)	= पा कर	इयं	= यह
यस्य	= जिस	विडम्भना	= हँसी
(मे)	= मुझ को	कस्य	= किसकी होगी ?
भवाभिधं	= भवसागर		
तरितुं	= पार करने का		॥५०॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः पुनातु वः

सहस्रचक्रुर्भगवान् सहस्रपात् ।

गलेऽद्विघमूले नयने च निश्चला-

स्त्रियोऽप्यमी यं पुरुषा उपासते ॥५१॥

सहस्रशीर्षा	= सहस्र फणों वाला	(एवं)	= और
पुरुषः	= पुरुष अर्थात् श्री शेषनाग जी	सहस्रपात्	= हजार किरणों वाला सूर्य भगवान्
सहस्रचक्रुः	= सहस्र नेत्रों वाला	अमी	= ये
	पुरुष इन्द्रदेव	त्रयः	= तीनों

पुरुषः	= पुरुष	उपासते	= भजते हैं
अपि	= भी	(सः)	= वह
निश्चलाः	= निश्चल	सहस्रशीर्षा	= अनंत शिरों वाला
(सन्तः)	= होकर	सहस्रचक्षुः	= अनंत नेत्रों वाला
यं	= जिस	(च)	= और
(शिवम्)	= शिवजी महाराज को	सहस्रपात्	= अपरिमित पदों वाला
(क्रमेण)	= क्रमशः	पुरुषः	= महापुरुष
गले	= कण्ठ देश में	भगवान्	= विराट् रूप भग- वान् शङ्कर
अङ्गिममूले	= चरणों पर	वः	= आप लोगों को
च	= आर	पुनात्	= पवित्र करे ॥५१॥
नयने	= नेत्र-स्थान पर	उं	

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा
 शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्मः ॥
 नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि ।
 त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि
 सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वकारमवतु अवतु
 माम अवतु वकारम् उं शांतिः शांतिः शांतिः ।

मित्रः	= प्राण और दिन अभिमानी देवता	भवतु	= होवें
नः	= हमको	वरुणः	= अग्नि और रात्रि अभिमानी देवता
शं	= सुखकारी	नः	= हमें

शम्	= सुखप्रद	ब्रह्मणे	= व्यापक ब्रह्म को
भवतु	= होवें	नमः	= नमस्कार हो
अर्यमा	= नेत्र और सूर्य अभिमानी देवता	वायो	= हे वायु देवता
नः	= हमको	ते	= आपको
शं	= सुखकारी	नमः	= नमस्कार हो
भवतु	= होवें	त्वं	= आप ही
इन्द्रः	= वल अभिमानी देवता	प्रत्यक्षं	= प्रत्यक्ष
नः	= हमें	ब्रह्म	= ब्रह्म
शं	= सुखदायक	असि	= हैं
भवतु	= होवें	त्वामेव	= आप को ही
वृहस्पतिः	= वाणी अभिमानी देवता	प्रत्यक्षं	= प्रत्यक्ष
नः	= हमको	ब्रह्म	= ब्रह्म
शं	= सुखकारी	वदिष्यामि	= मैं कहूँगा
भवतु	= होवें	त्वामेव	= आप को ही
उस्त्रक्रमः	= राजा बलि के यज्ञ पर बढ़ाने वाले चरणों वाला	ऋतं	= निश्चयात्मक वुद्धि
विष्णुः	= भगवान् नारायण	वदिष्यामि	= मैं कहूँगा
नः	= हमको	त्वामेव	= आप को ही
शं	= सुखकारी	सत्यं	= सत्यस्वरूप
भवतु	= होवे	वदिष्यामि	= मैं कहूँगा
		तत्	= वह वायुरूप ब्रह्म
		माम्	= मुझ विद्यार्थी को
		अवतु	= रखा करे अर्थात् विद्या से युक्त करे
		तत्	= वह वायुरूप ब्रह्म

वक्तारम् = आचार्य अर्थात्
गुरु की
अवतु = रक्षा करे अर्थात्
विद्या पढ़ाने में
समर्थ बनावे
माम् = मुझे
अवतु = रक्षा करे
वक्तारम् = गुरुदेव को

अवतु = रक्षित करे
ॐ शांतिः = आध्यात्मिक विज्ञों
से शांति हो !
शांतिः = आधिमौतिक विज्ञों
से शांति हो !
शांतिः = आधिदैविक विज्ञों
से शांति हो !

ॐ शांतिः

॥ओ३म् ॥

श्रीब्रह्मविद्या

श्रीमन्महामाहेश्वराचार्यवर्य-श्रीमदभिनवगुप्त-
विरचिता ।

शिवभक्तानुचर-राजानकलच्चमणकृत-
भाषाटीकोपेता ।

正統彙編

卷之三

十一

正統彙編卷之三

十一

॥ ओ३८ ॥

श्रीब्रह्मविद्या ।

अथोन्यते ब्रह्मविद्या सद्यः प्रत्ययदायिनी ।

शिवः श्रीभूतिराजो यामस्मभ्यं प्रत्यपादयत् ॥१॥

अब प्राप्तावसर श्रीब्रह्मविद्या का श्रीगणेश करेंगे । इस ब्रह्मविद्या की प्राप्ति हमें कल्याणस्वरूप श्रीभूतिगजजी के द्वारा हुई है । यह ब्रह्मविद्या महाकाल के मुख से छुड़ाकर मनुष्य-मात्र को तत्त्वण ही पूर्ण-विश्वास दिलाती है ॥१॥

सर्वेषामेव भूतानां मरणे समुपस्थिते ।

यया पठितयोत्कम्य जीवो याति निरञ्जनम् ॥२॥

मृत्यु के समय इस ब्रह्मविद्या का पाठ करने से जीवात्मा इस देह को त्याग कर निरञ्जन पद को प्राप्त करता है ॥२॥

या ज्ञानिनोऽपि संपूर्णकृत्यस्यापि श्रुता सती ।

प्राणादिच्छेदजां मृत्युव्यथां सद्यो व्यपोहति ॥३॥

आप्तकाम ज्ञानी पुरुष भी यदि इस ब्रह्मविद्या का श्रवण अन्तकाल में करे तो वह भी प्राणों के भंग से उत्पन्न हुई मरण-पीड़ा को क्षण भर में त्याग देता है ॥३॥

यामाकर्ण्य महामोहविवशोऽपि क्रमादतः ।
प्रवोधं वक्तुसांमुख्यमन्येति रभसात्स्वयम् ॥४॥

मृत्यु के समय महामोह से परवश बना हुआ व्यक्ति भी
इस ब्रह्मविद्या को सुनकर अनायास ही वक्ता के सन्मुख होकर
ज्ञान को प्राप्त करता है ॥४॥

॥ इति माहात्म्यम् ॥

ओं ह्रीं हूँ फ्रें ह् र् क्ष् म् ल् व् य् एँ
परमपदात्त्वमिहागाः सनातनस्त्वं जहीहि देहान्तम् ।
पादाङ्गुष्ठादि विभो निबन्धनं बन्धनं ह्युग्रम् ॥१॥

ओं ह्रीं हूँ फ्रें ह् र् क्ष् म् ल् व् य् एँ

हे व्यापक प्रभो ! आप परमधाम से इस देह में आये हुए
हैं । आप सनातन पुरुष हैं । पाद-अंगुष्ठ से लेकर सारे देह में
ठहरे हुए बन्धनों के फलस्वरूप देह-ममत्व को त्याग
दीजिये ॥१॥

ओं ह्रीं हूँ फ्रें ह् र् क्ष् म् ल् व् य् एँ
गुल्फान्ते जानुगतं जत्रुस्थं बन्धनं तथा मेद्र ।
जहीहि पुरमग्यमध्यं हृत्पद्मात्त्वं समुत्तिष्ठ ॥२॥

ओं ह्रीं हूँ फ्रें ह् र् क्ष् म् ल् व् य् एँ
पादग्रन्थि, जानु, कंधे और कांख (बगल) के जोड़ों में

तथा गुदा में स्थित देह-बन्धन को त्याग करके हृत्कमल के द्वारा प्रफुल्लित बन जाइये ॥२॥

ओं ह्रीं हूँ फ्रें ह् र् क् म् ल् व् य् एँ
हंस हयग्रीव विभो सदाशिवस्त्वं परोऽसि जीवाख्यः ।
रविसोमवह्निमङ्घट्विन्दुदेहो हहह समुत्काम ॥३॥

ओं ह्रीं हूँ फ्रें ह् र् क् म् ल् व् य् एँ
हे नीरक्षीरविवेकी राजहंस ! हे हयग्रीव ! हे व्यापक !
आप पर-जीव-नामक साक्षात् सदाशिव हैं । सूर्य, चन्द्रमा और
अग्नि का स्वरूप बने हुए प्राण, अपान तथा समान के मेल से
आप स्वप्रकाशरूप शरीर वाले हैं ; अतः आप निश्चयपूर्वक
इस देह से निकल जाइये ॥३॥

ओं ह्रीं हूँ फ्रें ह् र् क् म् ल् व् य् एँ
हंस महामन्त्रमयः सनातनस्त्वं शुभाशुभापेक्षी ।
मण्डलमध्यनिविष्टः शक्तिमहासेतुकारणमहार्थः ॥
कमलोभयविनिविष्टः प्रबोधमायाहि देवतादेह ॥४॥

ओं ह्रीं हूँ फ्रें ह् र् क् म् ल् व् य् एँ
हे योतनात्मक स्वरूप वाले हंस ! आप पुण्य-पापों की
उपेक्षा करने वाले परमन्त्रस्वरूप सनातन पुरुष हैं । आप शक्ति-
रूपी पुल के कारण, बने हुए परमार्थ स्वरूप से युक्त समस्त
संसार-मण्डल में तथा हृदय-कमल के दोनों पुटों के बीच में
ठहरे हुए हैं । अतः आप प्रबोध को प्राप्त हो जाइये ॥४॥

ओं हीं हूँ फें ह् र् क् म् ल् व् य् एँ

अज्ञानात्वं बद्धः प्रबोधितोत्तिष्ठ देवादे ॥५॥

ओं हीं हूँ फें ह् र् क् म् ल् व् य् एँ

हे आद्यदेव ! आप अज्ञान के कारण ही बद्ध से प्रतीत होते हैं ; अतएव आप पूर्ण-ज्ञान को प्राप्त होते हुए उठ जाइये ॥५॥

ओं हीं हूँ फें ह् र् क् म् ल् व् य् एँ

ब्रज तालुसाह्यान्तं ह्यौदुम्बरघट्टितमहाद्वारम् ।

प्राप्य प्रथाहि हंहो हंहो वा वामदेवपदम् ॥६॥

ओं हीं हूँ फें ह् र् क् म् ल् व् य् एँ

हे हंहः* मन्त्रस्वरूप वाले परमात्मन् ! आप तालुस्थान में औदुम्बर नामक यमराज के द्वारा हिलाये गये परमद्वार को प्राप्त करके वामदेव की पदवी को प्राप्त कीजिये ॥६॥

*शैव संबन्धी रहस्यवाद के अनुसार वर्णमाला के निर्णय में शक्तिप्रधान तीन विसर्ग तथा शिवप्रधान तीन बिन्दुओं का उल्लेख किया गया है । यहाँ संकेतरूपता से प्रसंगवश उनके विषय में कुछ कहना आवश्यक प्रतीत होता है । शक्तिप्रधान “परविसर्ग, परापरविसर्ग और अपरविसर्ग” के वाचक क्रमेण “आ, अः और ह” वर्ण माने गये हैं । इसी भाँति शिवप्रधान “परबिन्दु, परापरबिन्दु और अपरबिन्दु” के वाचक क्रमपूर्वक “अ, अं और म” वर्ण कहे गये हैं । इसी आशय के आधार पर उपरोक्त “हंहः” मन्त्रस्वरूप में शिवशक्तिसंघटृरूपता की ओर संकेत है ।

ओं हीं हूँ फें ह् र् क् म् ल् व् य् एँ
 ग्रन्थीश्वर परमात्मन् शान्तमहातालुरंध्रमासाद्य ।
 उत्क्रम हे देहेश्वर निरञ्जनं शिवपदं प्रयाह्याशु ॥७॥

ओं हीं हूँ फें ह् र् क् म् ल् व् य् एँ
 हे ग्रन्थियों के स्वामी ! हे देह के प्रभो ! हे परमात्मदेव !
 अति प्रशान्त तालु में स्थित लम्बिका नामक रन्ध्र को प्राप्त कर
 इस देह का त्याग करके निरञ्जन शिव पदवी को प्राप्त
 करें ॥७॥

ओं हीं हूँ फें ह् र् क् म् ल् व् य् एँ
 आक्रम्य मध्यमार्गं प्राणापानौ समाहृत्य ।
 धर्माधर्मौ त्यक्त्वा नारायण याहि शान्तान्तम् ॥८॥
 ओं हीं हूँ फें ह् र् क् म् ल् व् य् एँ

हे नारायण ! आप मध्यधाम का आश्रय लेकर प्राणापान
 को लयीभूत करके पुण्यपापात्मक बन्धनों को त्याग कर अति
 शांत-धाम को प्राप्त कीजिये ॥८॥

ओं हीं हूँ फें ह् र् क् म् ल् व् य् एँ
 हे ब्रह्मन् हे विष्णो हे रुद्र शिवोऽसि वासुदेवस्त्वम् ।
 अग्नीषोमसनातनं मृत्युरण्डं जाहिहि हे महाकाश ॥९॥
 ओं हीं हूँ फें ह् र् क् म् ल् व् य् एँ
 हे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र स्वरूप वाले प्रभो ! आप स्वयं

कल्याणस्वरूप वासुदेव हैं। हे पराकाशस्वरूप ! हे अग्नी-
षोमात्मक देव ! हे सदा रहने वाले भगवान् ! आप इस पार्थिव
देह-पिण्ड को त्याग दीजिये ॥६॥

ओं हीं हूँ फ्रें ह् र् क् म् ल् व् य् एँ
अंगुष्ठमात्रप्रमलमावरणं जहिहि हे महासूच्म ॥१०॥

ओं हीं हूँ फ्रें ह् र् क् म् ल् व् य् एँ
हे महासूच्मस्वरूप ! आप हृदय में ठहरे हुए अंगुष्ठमात्र
निर्मल सूच्म शरीर रूपी आवरण को भी छोड़ दीजिये ॥१०॥

ओं हीं हूँ फ्रें ह् र् क् म् ल् व् य् एँ
पुरुषस्त्वं प्रकृतिमयै-

बद्धोऽहंकारतन्तुना बन्धः ।
अभवाभव नित्योदित,

परमात्मस्त्यज सरागमध्यानम् ॥११॥

ओं हीं हूँ फ्रें ह् र् क् म् ल् व् य् एँ

हे परमात्मदेव ! आप सदा रहने वाले तथा सर्वदा संसार
से विलग ठहरे हुए हैं। आप साक्षात् पर पुरुष हैं। आप
अपनी परा प्रकृति के द्वारा ही अहंकार रूपी पाशों से बन्धन में
पड़े हुए हैं। इत्यतः आप रागद्वेषात्मक संसार के पथ को
छोड़ दीजिये ॥११॥

ओं हीं हूँ फ्रें ह् र् क् म् ल् व् य् एँ
हीं हूँ मन्त्र शरीरमविलम्ब-

माशु त्वमेहि देहान्तम् ॥१२॥

ओं हीं हूँ फ्रें ह् र् ज् म् ल् व् य् एूँ

हे देव ! आप हीं हूँ मन्त्रस्वरूप वाले बनकर निर्विलम्ब
में देह त्याग पद को प्राप्त कीजिये ॥१२॥

ओं हीं हूँ फ्रें ह् र् ज् म् ल् व् य् एूँ

तदिदं गुणभूतमयं त्यज स्वपाट्कोशिकं पिण्डम् ॥१३॥

ओं हीं हूँ फ्रें ह् र् ज् म् ल् व् य् एूँ

हे देव ! आप इस अपनाये हुए त्रिगुणात्मक तथा पाञ्च-
मौतिक पट्कोशात्मक देह-पिण्ड का त्याग शीघ्र करें ॥१३॥

ओं हीं हूँ फ्रें ह् र् ज् म् ल् व् य् एूँ

मा देहं भूतमयं प्रगृह्यतां शाश्वतं महादेहम् ॥१४॥

ओं हीं हूँ फ्रें ह् र् ज् म् ल् व् य् एूँ

आप इस पाञ्चमौतिक देह को ग्रहण न करके सनातन
चिदाकाशस्वरूप पर शरीर को प्राप्त कीजिये ॥१४॥

ओं हीं हूँ फ्रें ह् र् ज् म् ल् व् य् एूँ

मण्डलममलमनन्तं त्रिधा

स्थितं गच्छ भित्त्वैतत् ॥१५॥

ओं हीं हूँ फ्रें ह् र् ज् म् ल् व् य् एूँ

त्रिलोकात्मक इस संसार मण्डल की परिधि को काट कर
अनन्त तथा निर्मल चिदाकाश मण्डल को प्राप्त कीजिये ॥१५॥

॥ इति शिवम् ॥

सकलेयं ब्रह्मविद्या स्यात्पञ्चदशभिः स्फुटैः ।
वाक्यैः पञ्चाक्षरैस्त्वस्या निष्कला परिकीर्त्यते ॥१॥
प्रतिवाक्यं यथाद्यन्तयोजिता परिपृच्छते ।

पंद्रह वाक्यों से रचित यह ब्रह्मविद्या स्फुटसूपता से सकला ब्रह्मविद्या कहलाती है। पर, प्रत्येक वाक्य के आध्य और अन्त में पञ्चाक्षरात्मक मन्त्र से संपुष्टि बन कर यह ब्रह्मविद्या निष्कला नाम से कही जाती है ॥१॥

तारो माया वेदकलो मातृतारो नवात्मकः ।
इति पञ्चाक्षराणि स्युः प्रोक्तव्याप्त्यनुसारतः ॥२॥

तारः—प्रणवः । माया—हीं । वेदकलः अथवा चतुष्कलः—हौँ । मातृतारः—फ्रें । नवात्मकः—हूरूमूलव्यग्रौँ । एवं “ओं हीं हौँ फ्रें हूरूमूलव्यग्रौँ”—इति पञ्चाक्षराणि ।

ओंकार तार कहलाता है, इसी भाँति हीं बीज माया, हौँ बीज वेदकल, फ्रें मातृतार और हूरूमूलव्यग्रौँ नवात्मक मन्त्र कहा जाता है। इन सारे बीजों को मिला कर पञ्चाक्षर मन्त्र बनता है। इसी पञ्चाक्षर मन्त्र से संपुष्टि बन कर उपरोक्त पंद्रह वाक्यों वाली ब्रह्मविद्या निष्कला ब्रह्मविद्या कहलाती है। इस निष्कला ब्रह्मविद्या का पाठ ग्रतिदिन करने से पुण्यपाणों का संबन्ध छूट जाता है और जीवात्मा परमात्मा परमेश्वर के साथ एकीभाव को प्राप्त करता है। इति शम् ॥

॥ इति श्रीब्रह्मविद्या समाप्ता ॥

शुद्धि-अशुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध	अशुद्ध
११	१६	चिद्रसस्योघं	चिद्रसस्याघं
१४	१, ५	पुरन्दर	पुरन्धर
१५	२३	त्वद्भ्यान	त्वद्ध्यान
१७	६	रजःप्रधान	रजप्रधान
१८	१	स्तुति करते	स्तुति करत
१९	५	युक्तं ते	युक्तं ते
२१	७	निविष्टं	निविष्ठं
२२	१६	निविष्टं	निविष्ठं
२२	२०	ब्रडामि	ब्रडामि
२२	२०	विडम्बनेयम्	विडम्भनेयम्
२३	६	ब्रडामि	ब्रडामि
२३	१२	विडम्बनेयम्	विडम्भनेयम्
४०	१६	मेहू	मेहू
४०	१७	पुरमग्यमध्यं	पुरमग्यमध्यं
४१	१३	शुभाशुभोपेक्षी	शुभाशुभोपेक्षी
४१	१४, १५	निविष्टः	निविष्ठः
४२	८, १२	ह्लौडम्बर	ह्लौदुम्बर
४२	८	घट्टितं	घट्टित
४४	११	बन्धैः	बन्धः
४४	२१	मन्त्रशारीर	मन्त्रशारीर



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi

I creator of
hinduism
server!



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi

I creator of
hinduism
server!

